

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५३५ अंक-१६३, वर्ष-१४, अप्रैल-२०११

परमागमसार'में से चूँटे हुए कानजीस्वामी के कुछएक वचनामृत

जिनके जन्म-मरणकी गांठ (भेदित) नहीं हुई, उन्होंने जीवनमें कुछ भी नहीं किया और जिन्होंने गृहस्थाश्रममें भी जन्म-मरण रूपी ग्रंथीको भेद दिया - उन्होंने सब कुछ कर लिया । सिद्ध प्रभु तो उनके हाथ आ गये हैं । २०६



सम्यक्त्वकी पूरी दुनियासे रुचि उड़ गयी है, - उसे एक आत्मामें ही रुचि है । वह एक आत्माको ही विश्राम-स्थल मानता है । एक आत्माकी ओर ही उसकी परिणति रह-रह कर जाती है । २२४



जिनके सिर पर जन्म-मरणरूपी तलवार लटक रही है - फिर भी जो संयोगोंमें खुशी मानते हैं, वे पागल हैं । २३३



जिसने जीवनकालमें संयोगके साथ ही भावी वियोगको चाहा है, अनुकूलतामें भी जिसको उसके वियोगकी भावना है, उसको उनके वियोगके समय खेद नहीं होता ।

२४२



देह तो तुझे छोड़ेगी ही, पर तूँ देहको (दृष्टिमें) छोड़े तो तेरी बलिहारी है - यह तो शूरीरोंका खेल है । २४३



एक बार अन्तरदृष्टि से प्रतीति कर कि मैं सिद्ध समान अशरीरी हूँ, शरीरका स्पर्श ही नहीं करता, अभी ही शरीरके मुक्त हूँ - एसी श्रद्धा न करने से देह छूटनेके समय शरीरके प्रति तेरी (एकत्व) लालसा तीव्रतर होती जायेगी । २४७



सम्यग्दृष्टिका ज्ञान अतिसूक्ष्म है, फिर भी वह राग और स्वभावके बिचकी सन्धिमें ज्ञानपर्यायका प्रवेश होते ही प्रथम बुद्धिगम्य भिन्नता करता है। ख्यालमें आ सके इस प्रकार (प्रथम ही) राग और स्वभाव दोनोंको छेदता है। बुद्धिगम्य छेदन याने कि, ख्यालमें आ सके इस प्रकार दोनोंमें भिन्नता करता है । सम्यक्दर्शन प्राप्त करनेकी और सम्यक्दर्शनको कायम रखनेके मार्गकी यह बात है। प्रथम यह बात सुनें, सुनकर विचार करें, और पीछे प्रयत्न करें।

२५८



सन्त कहते हैं कि हम हमारे स्वघरमें आए हैं । अब हम अनुकूलताके बर्फमें गलनेवाले नहीं और प्रतिकूलताकी अग्निमें जलनेवाले नहीं । हमारा ज्ञान-विलास प्रकट हुआ है, उसमें हम सोये सो सोये । अब हमें उठानेमें कोई भी समर्थ नहीं है । २९६



वर्तमानमें लेशमात्र भी प्रतिकूलता आए तो इससे सहन नहीं होती , परन्तु भविष्यमें आनेवाली अनन्त प्रतिकूलताओंके कारणरूप भावोंसे छूटनेकी इसे दरकार ही नहीं । ३१६



स्मशानमें फूले पड़े मुर्दाको खानेमें काले कौओंको मजा आता है । ऐसे ही यह हृष्टपुष्ट दिखता शरीर फूले-मुर्दे समान है, जो उसमें सुख मानते हैं, वे सभी काले कौओं समान हैं । ३१८



यह मनुष्य-भव मिला है सो भवका अभाव करनेके लिए मिला है, पैसा कमानेके लिए यह भव नहीं मिला, इसीलिए मृत्युके पूर्व ही आत्मकल्याणका यह कार्य कर ले । ३५०



अरे भाई ! तूँ कहाँ रुक गया ? बाहरमें ही बाहरमें रुक गया, तब आत्मप्राप्ति कहाँसे हो? जैसे घरमें आनन्दका प्रसंग हो, और कोई परिवार-जन सन्ध्या तक घर न लौटे तो बुजूर्ग कहते हैं कि अरे भाई ? तूँ सारे दिन कहाँ रुक गया ? वेसे ही श्रीगुरु कहते हैं कि अरे भाई ! इस परमानन्दके धामरूप आत्मामें तूँ नहीं आया, और बाहर ही बाहर कहाँ रुक गया ? कितने तो संसारमे पापके कार्योंमें रूके रहते हैं और वहाँसे निकले तो शुभरागके काममें बाहर ही बाहर रूक कर, स्वयंके भगवानको भूल जाते हैं । जो स्वयंके अन्तरमें परमात्मा विराजते हैं - वहाँ नहीं आता उसे श्रीगुरु उलाहना देकर-करुणासे अन्तरमें बुलाते हैं । ३७७



भाई ! सबकुछ आत्मामें भरा हुआ है, बाहरमें कुछ नहीं है । आत्मामें ज्ञान और सुख भरा हुआ है - वहाँ देख, वहाँ नजर कर तो तुझे ज्ञान और सुख मिलेंगे । बाहरमें कहीं भी सुख नहीं है । अरे ! एक बेटा मर जाए और पीछे घरके लोग रोते हैं कि अरे बेटा ! तेरे बिना यह महल और मकान स्मशान जैसे लगते हैं । वैसे ही भाई ! आत्माको जाने बिना बाहरमें सब कुछ स्मशान जैसा है । ३७८



आहाहा ! क्षणमें अनेक प्रकारके विचित्र रोग हो जाए - एसा शरीर है । कहाँ शरीर और कहाँ आत्मा ! इनमें तनिक भी मेल नहीं है । अहा ! ऐसी दुर्लभ मनुष्य देर मिली और ऐसा वीतराग मार्ग महाभाग्यसे मिला है, अतः मनका अधिकतम बोझा घटाकर आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिए । पांच इन्द्रियोंके रसरूप बोझको हटाकर आत्माको पहचाननेके विचारमें लगना चाहिए । अन्दरमें अनन्त आनंद आदि स्वभाव भरे हैं - ऐसे स्वभावकी महिमा आए (पहचान-होने पर) तब अन्तर पुरुषार्थ स्फुरित हुए बिना रहे ही नहीं । ३९६



स्त्री-पुत्र-पैसा-आबरू आदिमें या रागकी मन्दतामें सुख है - जो ऐसा मानते हैं उन्होंने जीवको मार डाला है; क्योंकि उनका अभिप्राय ऐसा है कि मैं आनन्दस्वरूप नहीं, पर मुझे मेरा आनन्द बाहरसे मिलता है । चैतन्यपरिणतिसे जीना - वही जीवका जीवन है, अन्य सब तो चलते मुर्दे हैं । पामर पर वस्तुमें दृष्टि लम्बाकर

सुख मानते हैं, पर 'प्रभु तू दुःखी है' । जहाँ आनन्दका धाम-आनन्दका ढेर है - उसे जिसने प्रतीति और ज्ञानमें लिया, उसे ज्ञान और आनंदरूप परिणति होती है - यही वास्तविक जीवन है । ४०७



बाहरमें उत्साहित न हो, भाई ! यब सब तो क्षणभंगुर है और अनन्त बार मिला है, बाहरमें जो सर्वस्व माना है उसे पलट कर ऐसा मान कि अनन्त गुणका पिण्ड आत्मा - यही मेरा सर्वस्व है । भगवान पूर्णानन्दका नाथ-चैतन्यकी जगमग ज्योति है, उस रूप परिणमन हो - वही जीवका जीवन है । जो पुण्यपाप व उसके फलमें सर्वस्व मानता है, वह असाध्य-बेसुध हो गया है । अतः अब बाहरमें माने गए सर्वस्वको पलटकर, स्वमें सर्वस्व मान । ४०८



आत्मा हर प्रकारके संयोगमें भी निज-शान्ति प्रकट कर सकता है । अपनी शान्ति प्रकट करनेमें जगतका कोई बाह्य पदार्थ विघ्न डालनेमें समर्थ नहीं । चाहें जैसे तीव्र प्रतिकूलताके प्रसंग आ पड़े - पुत्र मर जाए, पुत्री विधवा हो जाए, जंगलमें अकेला पड़ गया हो और हैजा आदि रोग हो गये हों, क्षुधा-तृषाकी तीव्र वेदना हो या सिंह-बाध दहाड़ता हुआ खा जानेके लिये आया हो, इत्यादि जैसे तीव्र प्रतिकूल प्रसंगों में भी उन संयोगोंका लक्ष्य छोड़कर, अन्तरमें आत्मा अपनी शांति प्रकट करनेमें समर्थ है । बाहरमें वर्तती प्रतिकूलता अन्दरमें आत्मशान्तिको नहीं रोक सकती । शास्त्रमें तो कहा है कि नरकके एक क्षणकी भी पीड़ा ऐसी है कि उसे कोटि जीभोंसे कोटि वर्षों तक कहें तो भी नहीं कही जा सकती - नरककी पीड़ा ऐसी प्रचंड है, फिर भी इस संयोग और पीड़ाका लक्ष्य छोड़ दे तो आत्मा निज-शांति प्रकट कर सकता है । भाई ! तेरा तत्त्व सदा विद्यमान है, उसमें लक्ष्य करनेसे निज-शांति प्रकट की जा सकती है । ४१७



मैं जाननेवाला, देखनेवाला ज्ञाता हूँ - ऐसा बारंबार अंतरमुख अभ्यास करनेसे ज्ञातापना प्रकट होता है, तब विकल्पका कर्तृत्व छूटता है । ४२६



(चलो सखी वहाँ जईए जहाँ अपना नहीं कोय,
शरीर भखे जनावरा मुवा रोवे न कोय।)

आहा हा ! संगसे दुर हो जा ! संगमें रूकना योग्य नहीं । गिरि-गुफामें अकेला चला जा । यह मार्ग अकेलेका है । जो स्वभावके संगमें अनुरक्त हुआ उसे शास्त्र-संग भी नहीं रूचता । आहा हा ! अन्तरकी बातें बहुत सूक्ष्म हैं, भाई ! क्या कहें । ४३३



परिणामको परिणाम द्वारा देख - ऐसा नहीं ; किन्तु परिणाम द्वारा ध्रुवको देख । पर्यायसे परको तो न देख-पर्यायको भी न देख; पर जो भगवान पूर्णानन्दका नाथ प्रभु है उसे पर्यायसे देख-उसे तू निहार - तेरी दृष्टि वहाँ लगा, छः मास ऐसा अभ्यास कर । अन्तर्मुख तत्त्वको अन्तर्मुख परिणाम द्वारा देख । अन्तरमें प्रभु परमेश्वर स्वयं विराजते हैं, उन्हें एक बार छः मास तो खोज- यह क्या है ? अन्य चपलता और चंचलता छोड़कर अन्तरमें जो भगवान पूर्णानन्दका नाथ "सिद्धसदृश प्रभु है" - उसे छः मास तो शोध । ४३८



पांच-छः गाँव चलें तो थकान मिटानेके लिए विश्राम लेते हैं न ! यहाँ तो अनन्त-अनन्तभव किए तो भी थकान

नहीं लगी । सर्वज्ञदेव कहते हैं कि तूँ स्वभावमें विश्राम ले-तेरी थकान उतर जाएगी । शुद्ध चैतन्य भगवानके आश्रय से शुद्ध परिणति करना - यह अपूर्व । ऐसी सम्यक् परिणति करे तो शाश्वत सुखको प्राप्त हो, अनन्त-अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायें प्रकटताको प्राप्त हों। अतः बाहरके हर्ष-उत्साहके सबड़के (रसासक्ति) छोड़ दे, यह भान्ति छड़ दे और जिनवरदेव द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति कर तो तूँ अवश्य शाश्वत-सुखको प्राप्त होगा। ४५९



अरेरे ! जहाँ पाँच-पचास हजार रुपये मिल जायें तो (अज्ञानी) हर्षित हो जाता है, पर सचमें तो वह रो रहा है । आत्मामें अनन्त गुणोंकी अजायबी है, उसे तो देखता नहीं; और पैसे मेरे, राग मेरा, ऐसे जीवनकी ज्योतिको कहाँ उलझा दी है, और आत्माका खून कर रहा है । ४७६



अनन्त-अनन्त गुणोंके सागर - ऐसे भगवान आत्माके अनन्त-अनन्त गुणोंसे विरुद्ध भाव, जो मिथ्यात्व है - उसके गर्भमें अनन्तान्त भव पड़े हैं , इसीलिए सर्व प्रथम उसका त्याग करना चाहिए। अनन्त गुणोंके भण्डार रूप भगवानसे विरुद्ध श्रद्धारूप-मिथ्यात्वभावमें अनन्त-अनन्त गुणोंका अनादार है । अनन्त गुणोंका लाभ स्व-आश्रयसे होता है । ऐसा न मानकर पराश्रित ऐसे राग-भावमें जिसने अपनापन माना है, उसने अनन्त गुणोंका अनादार किया है । अनन्तानन्त गुण हैं उनका अनादर कर, रागके एक कणको भी अपना मानने वाले - मिथ्यात्वभावमें अनन्तानन्त दुःख भरे हैं । इसीलिए इस मिथ्यात्वभावके त्यागका उद्यम क्यों नहीं करता ? गफलतमें कैसे रहता है ? ४८६



ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा ! निगोदमेंसे निकलकर त्रसपर्याय पाना - यह चिन्तामणि तुल्य दुर्लभ है; तो नर-भव पाना, जैनधर्म मिलना तो महा दुर्लभ है । धन और कीर्ति मिलना यह कोई दुर्लभ नहीं है । ऐसा उत्तमयोग मिला है - यह अधिक समय तक नहीं रहेगा; अतः बिजलीकी क्षणीक कौंदमें मोती-पिरो लेना ही योग्य है । ऐसा योग फिर कहाँ मिलेगा ? अतः तूँ मिथ्यात्वको छोड़नेके लिए एक बार आत्मोत्सर्ग-सम प्रयत्न कर । दुनियाके मान-सन्मान और पैसेकी महिमा छोड़कर दुनिया क्या कहेगी उसका लक्ष्य छोड़कर, मिथ्यात्वको त्यागनेका एक बार मरण-तुल्य प्रयत्न कर । ४८७



कोई छूरी लेकर मारने आए तो भय लगे, सर्प दिखे तो भय लगे, बिच्छु दिखनेसे डर लगे और शत्रुको देखनेसे डर लगे । भयंकर रोगको देखनेसे भी भयभीत हो; परन्तु जो अनन्त-भवोंका कर्ता है ऐसे मिथ्यात्वभावसे जीवको भय नहीं लगता । जो इसका भय लगे तो स्वभाव-शरण खोजने निकले । ५०६



ट्रस्ट का इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अप्रैल-२०११) का शुल्क श्रीमति निर्मलाबहन मणीलाल सावला, (मुंबई) के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

७०२

राज, श्रावण वदी १४, रवि, १९५२

विचारवान पुरुष तो कैवल्यदशा होने तक मृत्युको नित्य
समीप ही समझकर प्रवृत्ति करते हैं।

भाईश्री अनुपचंद मलुकचंदके प्रति, श्री भृगुकच्छ।

प्रायः किये हुए कर्मोंकी रहस्यभूत मति मृत्युके समय रहती है। एक तो क्वचित् मुश्किल से परिचित परमार्थभाव; और दूसरा नित्य परिचित निजकल्पना आदि भावसे रूढ़िधर्मके ग्रहण करने का भाव ऐसे दो प्रकार के भाव हो सकते हैं। सद्विचारसे यथार्थ आत्मदृष्टि या वास्तविक उदासीनता तो सर्व जीवसमूहको देखते हुए किसी विरल जीवको क्वचित् ही होती है, और दूसरा भाव अनादि से परिचित है, वही प्रायः सब जीवों में देखने में आता है, और देहांत होने के प्रसंगपर भी उसका प्राबल्य देखने में आता है, ऐसा जानकर मृत्यु के समीप आनेपर तथारूप परिणति करने का विचार विचारवान पुरुष छोड़कर, पहलेसे ही उस प्रकार से रहता है। आप स्वयं बाह्यक्रियाके विधि-निषेधके आग्रह को विसर्जनवत् करके अथवा उसमें अंतर्परिणामसे उदासीन होकर, देह और तत्संबंधी संबंध का वारंवार का विक्षेप छोड़कर, यथार्थ आत्मभाव का विचार करना ध्यानगत करे तो वही सार्थक है। अंतिम अवसरपर अनशनादि या संस्तरादिक या संलेखनादिक क्रियाएँ क्वचित् हो, या न हो तो भी जिस जीवको उपर्युक्त भाव ध्यानगत है, उसका जन्म सफल है, और वह क्रमसे निःश्रेयसको प्राप्त होता है।

आपका, कितने ही कारणों से बाह्यक्रियादिके विधि-निषेधका विशेष ध्यान देखकर हमें खेद होता था कि इसमें काल व्यतीत होनेसे आत्मावस्था कितनी स्वस्थताका सेवन करती है, और क्या यथार्थ स्वरूपका विचार कर सकती है कि जिससे आपको उसका इतना अधिक परिचय खेदका हेतु नहीं लगता ? जिसमें सहजमात्र उपयोग दिया हो तो चल सकता है, उसमें 'जागृति' कालका लगभग बहुतसा भाग व्यतीत होने जैसा होता है, वह किसलिये और उसका क्या परिणाम ? वह क्यों आपके ध्यानमें नहीं आता ? इस विषयमें क्वचित् कुछ प्रेरणा करनेकी संभवतः इच्छा हुई थी; परंतु आपकी तथारूप रुचि और स्थिति दिखायी न देने से प्रेरणा करते करते वृत्तिको संकुचित कर लिया था। आज भी आपके चित्तमें इस बातको अवकाश देने योग्य अवसर है। लोग मात्र विचारवान या सम्यग्दृष्टि समझे, इससे कल्याण नहीं है अथवा बाह्य-व्यवहार के अनेक विधि-निषेधके कर्तृत्व के माहात्म्य में कुछ कल्याण नहीं है, ऐसा हमें तो लगता है। यह कुछ एकान्तिक दृष्टि से लिखा है अथवा अन्य कोई हेतु है, ऐसा विचार छोड़कर, जो कुछ उन वचनों से अंतर्मुखवृत्ति होने की प्रेरणा हो उसे करने का विचार रखना, यही सुविचारदृष्टि है।

लोकसमुदाय कुछ भला होनेवाला नहीं है, अथवा स्तुतिनिंदा के प्रयत्नार्थ इस देहकी प्रवृत्ति विचारवान के लिये कर्तव्य नहीं है। अंतर्मुखवृत्ति रहित बाह्यक्रियाके विधि-निषेधमें कुछ भी वास्तविक कल्याण नहीं है। गच्छादि भेदका निर्वाह करने में, नाना प्रकार के विकल्प सिद्ध करने में आत्मा को आवृत्त करने के बराबर है। अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यग्, एकान्त निजपदकी प्राप्ति कराने के सिवाय दूसरे किसी अन्य हेतु से उपकारी नहीं है, ऐसा जानकर लिखा है। वह मात्र अनुकंपा बुद्धिसे, निराग्रह से, निष्कपटतासे, निर्दंभतासे और हितार्थ लिखा है, ऐसा यदि आप यथार्थ विचार करेंगे तो दृष्टिगोचर होगा, और वचन के ग्रहण अथवा प्रेरणा होने का हेतु होगा।





श्री स्वानुभूतिदर्शन, प्रश्न २२२ पर पूज्य भाईश्री
शशीभाई का प्रवचन, प्रवचन नं. ४१९
(दि.२४-९-१९९७)

प्रश्न जो है वह पहले समझना चाहिए। क्योंकि उत्तर जो होता है वह प्रश्न के अनुसार होता है। कोई भी बात सामने आये तब किस भूमिका की बात चलती है इतनी बात अगर हमारे ख्याल में न हो तो बात करनेवाले कहेंगे कुछ और हम सोचेंगे कुछ और दूसरा ही विचार करेंगे। उपदेश तो भगवानने मुनि को दिया है, ज्ञानियों को दिया है और मुमुक्षुओं को भी दिया है। इसतरह तीन स्तरों में उपदेश सामान्यरूप से है। विशेषरूप से तो मुनिओं की भी अनेक भूमिका हैं, वह भूमिका का उपदेश है। ज्ञानियों की भी अनेक भूमिका हैं चतुर्थ और पंचम गुणस्थान में भी, इसके अनुरूप उपदेश है और मुमुक्षु की भी अनेक भूमिकाएँ हैं। सब एक ही योग्यतावाले मुमुक्षु नहीं होते। ज्ञानियों-मुनियों की चर्चा का अभी हमें कोई प्रयोजन नहीं है परन्तु मुमुक्षु की भूमिका का प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- हम पूर्वभूमिका में हो तो प्रश्न किस भूमिका का है इसका निर्णय करना हो तो कैसे करें ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, आसानी से पता नहीं चलता। सत्संग आवश्यक है। हररोज हमलोग सत्संग इसीलिये करते हैं क्योंकि आसानी से पता चले ऐसा विषय नहीं है कि, किस भूमिका का प्रश्न है ? अतः यह तो बिना सत्संग समझ में आये ऐसा नहीं है। वैसे भी कोई गंभीर रोग हुआ हो तब दर्दी को Hospitalise करना ही पड़ता है। और Hospital में ले जाने के पश्चात् उसका Supervision उन लोगों के हाथ में जाता है। फिर

दर्दी अपनी मनमानी नहीं कर सकता और दर्दी के रीश्तेदार भी नहीं कर सकते। फिर तो जो डॉक्टर कहे वैसे ही चलना पड़े। उसके कब्जे में गये हो फिर तो। और वे लोग ध्यान भी बहुत रखते हैं। हर घण्टे, आधा घण्टे जैसी जरूरत, हर दो घण्टे में सारे Reading लेते रहे। इसकी जाँच करते ही रहते हैं कि इसे क्या हो रहा है ? क्या हो रहा है ? सुधार हो रहा है या बिगाड़ हुआ ? सुधार हुआ कि (नहीं) ? दवाई की, Treatment का असर है कि नहीं ? और तब ही वह दर्द मिटता है। वह उसकी जरूरत है। और यह बात दर्दी को या सगेसंबंधियों को रुचे या नहीं रुचे अनिवार्यरूप से दाखिल होना ही पड़ता है। और कोई रास्ता नहीं है।

वैसे यह एक भवरोग है वह सब से गंभीर भवरोग है, सब रोग से। शरीर के सभी रोगों से आत्मा को यह जो रोग लागू पड़ा है कि, अनंतकाल से यह जीव परिभ्रमण कर रहा है फिर भी इस परिभ्रमण का अभी तक नाश नहीं कर सका तो इसका नाश कैसे हो ? यह एक सबसे बड़ी समस्या है, रहस्यमय समस्या है और इस बात में अनन्त अर्थ समाया है - यह बात 'कृपालुदेव' ने १९५ में की, कि इस बात में अनन्त अर्थ समाया है। अतः यदि इस विषय की गंभीरता पर अगर ध्यान न जाये तो सत्संग का जो महत्व है वह समझ में नहीं आयेगा कि सत्संग क्यों करना है ?

सत्संग है उसमें हररोज कोई न कोई सूचना

मिलती है और तदनुसार हमें Treatment लेनी रहती है, Treatment करनी रहती है, जहाँ हमें जो लगे उस हिसाब से। इसलिये यह बहुत जरूरी वस्तु है और ज्ञानियों की भी आज्ञा है। 'कृपालुदेव' का तो बहुत जोर है कि देहत्याग हो ऐसे प्रसंग में भी सत्संग को गौण करने योग्य नहीं है। यह बात उन्होंने ६०९ पत्र में की है।

यहाँ जो है वह जिसका पुरुषार्थ सहज नहीं चलता है। सहज पुरुषार्थ की भूमिका में जो जीव नहीं आया उसको क्या करना ? अंतर की गहराई से कोई भाव अभी सहज अंदर से नहीं आते हैं। तो उसे क्या करना ? ऐसी भूमिकावाले का प्रश्न है।

तब 'बहिनश्री'ने ऐसा कहा कि, तुझे भले ही अंतर से न आता हो तो ऊपर-ऊपर से कर। परन्तु तू यह पद्धति, यह मार्ग, यह सत्संग इत्यादि जो भी हैं उसे छोड़ना मत। भले ही तुझे अंतर से नहीं होता हो। ऐसा करके तू छोड़ मत देना, छोड़ मत देना।

अतः समाधान में कहते हैं 'हाँ उस मार्ग पर जा।' और ऊपर-ऊपर से प्रयत्न करता हो तब भी 'अंतर में अपना लक्ष्य और भावना ऐसी रख कि गहरे उतरने जैसा है।' उस वक्त भी एक बात तेरे लक्ष्य में होनी चाहिये कि, ये ऊपर-ऊपर से जबतक हो रहा है तबतक मेरा काम नहीं चलेगा। मुझे कभी भी गहराई में तो जाना होगा और गहराई में जाने के लिये मुझे प्रयत्नशील रहना। यह बात आगे से ध्यान में रखनी है। वरना ऐसा कहा कि ऊपर-ऊपर से कर इसलिए हम तो ऊपर-ऊपर से करते हैं। हमें यह लागू पड़ता है इसलिये हम ऐसा करते हैं। परन्तु जैसे वहाँ संतुष्ट हो जाने के लिये वैसा नहीं कहा है।

ऊपर-ऊपर से करने की तुझे इजाजत मिली है वह भी शर्त अधीन है। वह इस शर्त के अधीन है कि उस वक्त भी तेरे लक्ष्य में यह बात होनी चाहिये कि अंतर की गहराई में मुझे जाना होगा

ऊपर-ऊपर से नहीं चलना है। यानी कि वह बात शर्त के अधीन है।

'करना तो गहराई में (ज्ञायक में) हैं।' गहराई में मतलब आत्मा में आत्मा की गहराई में करने का है। 'परन्तु मुझ में अभी बहुत अपूर्णता है।' देखो ! यह स्वीकार आया। वहाँ अब स्वीकार आया कि मेरे में बहुत कमी है। इस कमी की वजह से मुझे कहीं भी अहंभाव करने का तो सवाल ही नहीं उठता कि मैं इतना तो करता हूँ न, इतना तो करता हूँ न। ऐसा कोई अहंभाव करने का सवाल ही नहीं है।

'मुझ में अभी बहुत अपूर्णता है ऐसे निर्णय करके गहराई का लक्ष्य करने का प्रयत्न कर।' ऊपर-ऊपर से करते वक्त भी गहराई में जाने का प्रयत्न करना। क्योंकि यह बात तेरे लक्ष्य में होनी चाहिये और उसका प्रयत्न भी होना चाहिये। 'ऊपर-ऊपर से जो होता है उसे छोड़ नहीं देना।' छोड़ नहीं देना है। भले ही ऊपर-ऊपर से होता हो। परन्तु उतना भी छोड़ देने की बात नहीं है। 'क्योंकि हम तुझे अशुभ में आने को नहीं, कहते तथा शुभ में रुकने को भी नहीं कहते;...' ऊपर-ऊपर से करना भी अगर छोड़ देगा तो पुनः अशुभ में जाने में देर नहीं लगेगी। क्योंकि इसका तो घिरावा है। अशुभयोग का घिरावा है। घर, दुकान ये सब अशुभयोग का ही घिराव है। वहाँ जाने का तो हम तुझे कहते ही नहीं हैं। और ठीक वैसे अशुभमें से तू शूभ में आकर वहाँ अटक जा ऐसा भी हम नहीं कहते।

शुभ-अशुभ की चर्चा, दर्शनमोह और अज्ञान मिटाने पर जिसका जोर न हो वे लोग किया करते हैं। केवल शुभाशुभ की चर्चा कौन करते हैं ? कि भाई ! ऐसा पाप नहीं करना है, ऐसा पाप नहीं करना है, ऐसा पाप नहीं करना है। आपको जिनमंदिर हररोज आना चाहिये। रात्रिभोजन नहीं करना चाहिये। इसका ऐसे, इसका ऐसे। पुण्य-

पाप की चर्चा कौन करते हैं ? कि, जिनका मिथ्यात्व और अज्ञान मिटाने पर जोर नहीं हो वे। मिथ्यात्व और अज्ञान वे भयंकर संसार परिभ्रमण के कारण हैं ऐसा जिनका ध्यान गया, यह बात जिनके लक्ष्य में आयी वे शुभाशुभ को गौण करते हैं।

मुमुक्षु :- पुण्य को मुख्य करते हैं।

पूज्य भाईश्री :- उसे गौण कर देते हैं। शुभाशुभ को गौण कर देंगे। अतः कहीं पर अशुभ होगा तो अशुभ पर भी ज्यादा जोर नहीं देगा और शुभ होगा तो उस पर भी ज्यादा जोर नहीं देगा।

मुमुक्षु :- शुभ हो तो अच्छा ऐसा अभिप्राय छूट जायेगा।

पूज्य भाईश्री :- ऐसा अभिप्राय छूट जायेगा। वैसे अशुभ पर भी इतना जोर नहीं देगा। उसका जोर ऐसे रहेगा कि मेरा मिथ्यात्व कैसे टले ? मेरा अज्ञान कैसे मिटे ? उस तरफ उसका जोर जायेगा। अब एक दूसरी परिस्थिति क्या है इसमें ? कि जिसका शुभाशुभ पर जोर ज्यादा रहता है उसका जोर अज्ञान और मिथ्यात्व टालने के प्रति नहीं जाता। और जो अज्ञान और मिथ्यात्व मिटाने पर जोर देगा वह यदि शुभ-अशुभ को गौण करेगा तो उसे ज्यादा नुकसान नहीं होगा। इससे उसको बड़ा नुकसान नहीं होगा। परन्तु अगर अज्ञान और मिथ्यात्व को मिटायेगा तो पूरा संसार टलेगा और उसके शुभाशुभ भी मिटेंगे। अतः सही पद्धति वह है।

वैसे देखा जाये तो जिनेश्वरदेव ने भी इस पद्धति से अपना काम किया है और इसी पद्धति से काम करने का उपदेश भी दिया है तो फिर हमें दूसरा कौन-सी डेढ़-होशियारी करनी चाहिये ? कार्य करने की रीति और नीति क्या है ? दोनों स्पष्ट कर दिया है। नीति नाम Policy. Policy ऐसी है कि प्रथम बड़े दुश्मन को मारो तो छोटे-छोटे अपनेआप भगने लगेगें।

मानो यह एक हमारे देश का राजतंत्र है। और पूरा का पूरा बदल चूका है अभी तो मानो

न। इतनी सारी गड़बड़ी हो गई है कि लोगों की ऐसी सोच हो गई है कि, इसमें सुधार संभव ही नहीं है। अब इसमें कैसे सुधार किया जाये ? ऊपर से नीचे तक सारी गड़बड़ी है। चपरासी भी गड़बड़ी करता है और Minister भी गड़बड़ी करता है और बीच में भी कोई इमानदार आदमी नहीं है। अब क्या करें ?

अब, अगर सुधार करना हो तो इसकी नीति क्या होनी चाहिये ? हमारे यहाँ चलते विषय में दृष्टांत लागू होता है इसलिये लेते हैं। वरना वैसे राजकारणियों की चर्चा में हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु राजतंत्र हो या हमारी Office का Management हो या जिसमें २५-५०-१०० लोग काम करते हो और सब बिगड़ चूके हो। सुधार के लिये नीति क्या होनी चाहिये ? सुधार की शुरुआत नीचे से करें या ऊपर से करें ? कि, उपर से करनी चाहिये।

कम्पनी का मालिक उसके General manager को निकाल दे, कि You getout और प्रधानमंत्री उसके नायब प्रधानमंत्री को निकाल देवे कि तू घर चला जा। कूर्सी खाली कर दो। तो नीचेवाले सब में घबराहट फैल जाये। तो दस प्रतिशत काम उसने किया, नब्बे प्रतिशत में सुधार स्वतः चालू हो जायेगा। समझ जायेंगे कि उसको जब निकाल दिया तो अपना तो कोई बुता ही नहीं है इनके आगे। इसलिये अशक्य है ऐसा नहीं है परन्तु कार्य की पद्धति से कार्य होता है।

मुसलमान की तरह पायजामा ऊँचा पहनने से कोई अभिमान का नाश नहीं हो जाता। उनलोगों में हज करके आये उनके लिये ऐसा नियम है। पैसेवाले ही हज कर सकते हैं। क्योंकि स्टीमर में जाना और ऐसे-ऐसे खर्च करना। अभी Plane में जाते हैं तो भी खर्च तो होता ही है। उन लोगों में ऐसा नियम है कि कर्जा करके कोई यात्रा नहीं करनी चाहिये। आपके अपने पैसे से

ही यात्रा करनी है। किसी से उधार पैसे लेकर हज कर ले ऐसा नहीं करना चाहिये। और जो लोग हज करके आते हैं उनको सब हाजीसाब ही कहते हैं। क्योंकि पैसेवाले होते हैं तो सेठ(साब) कहते हैं। हाजी सेठ ! हाजीसाब ! अब वहाँ ऐसा उन्हें समझाया जाता है कि, देखो ! भाई आपको घमंड हो जायेगा। मैं पैसेवाला और मैं यात्रा कर आया। तो (इसने कहा) क्या करने का ? तो कहा, आपको पायजामा ऊँचा पहनने का। अब इसमें कोई समझदारी का हिसाब है क्या ?

अब वह दोष मिटाने के लिये कहा कि आपको ब्याज नहीं खाना है। भले ही आपके पास पैसे हैं लेकिन आपको ब्याज नहीं खाना है। इसलिये अभी लोग क्या करते हैं ? ब्याज लेते नहीं और फिर लोन लेकर ब्याज देते भी नहीं। हुआ वह का वह। संक्षेप में क्या है ? वह दोष कभी मिटेगा नहीं। ऐसी रीति-नीति हो तो दोष कभी नहीं मिटते।

इसलिये भगवान ने सोच समझकर कहा है और समझकर कहा है कि पहले तू बड़ा दोष मिटा। दर्शनमोह है, मिथ्यादर्शन है वह तेरा बड़ा दोष है, अनन्त संसार में भटकाता है। वह श्रद्धा का दोष (है)।

ज्ञान में तेरे मिथ्या अभिप्राय, पूर्वग्रह और परलक्ष्य है वह तेरा बड़ा दोष है उसे मिटा दे। चारित्र में जो तुझे शुभाशुभ होते हैं इसकी फिलहाल तुझे कोई दरकार करने की जरूरत नहीं है। जैसे ही तू बड़ा दोष मिटाने के लिये प्रयत्नवान होगा कि, तेरे राग और द्वेष, शुभ और अशुभ इसका रस ठण्डा हो जायेगा। उदासीनता आयेगी प्रथम सीढ़ी चढ़ते ही। जैसे ही परिभ्रमण की वेदना आयी कि उदासीनता शुरू होगी और तेरा रागरस तो ठण्डा हो ही जायेगा। राग-द्वेष तो जैसे ही तेरे फीके पड़ जानेवाले हैं। इसके लिये कोई अलग से प्रयत्न करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसप्रकार पूरी पद्धतिसर बात है। इस पद्धतिनुसार चले जब

तो दीक्कत नहीं होगी परन्तु स्वयं कल्पना करके चाहे जैसी रीति नक्की कर ले कि मुझे ऐसा करना चाहिये... मुझे ऐसा करना चाहिये - ऐसा करना चाहिये। ऐसा क्रम काम में नहीं आता। ज्ञानी के मार्ग पर चलना पड़े। ज्ञानी का मार्ग कहो या जिनमार्ग कहो दोनों एक ही बात हैं, दो मार्ग नहीं हैं।

'कृपालुदेव' ने ज्ञानी का मार्ग कहा। ऐसा शब्द इस्तेमाल किया है। वैसे तो यह जिनमार्ग है। परन्तु इसमें बहुत मर्म है कि शास्त्र में कई सारी बातें हैं। इसलिये जो अपनी रीत नक्की करता है वह (ऐसा कहता है कि) देखो ! भगवानने ऐसा कहा है ऐसा मैं कहता हूँ और ऐसा मैं करता हूँ। इसलिये मैं तो जिनमार्ग में चलता हूँ। भगवानने इतना व्यवहार कहा है कि, तू हररोज पूजा करना, हररोज दान देना, हररोज तू स्वाध्याय करना, 'षट्कर्माणि दिने दिने, षट्कर्माणि दिने दिने' ये षट् आवश्यक जो हैं वह तुझे हररोज-प्रतिदिन करना चाहिये। जिनेन्द्रदेव कथित व्यवहार है उस जिनोक्त व्यवहार का मैं पालन करता हूँ। इसलिये 'कृपालुदेव' ने इसमें से दूसरी बात निकाली कि, ज्ञानी के मार्ग पर चल।

मुमुक्षु :- भगवान तो परोक्ष हो गये।

पूज्य भाईश्री :- भगवान परोक्ष हो गये और बातें तो बहुत सी हैं तो तुझे जो ठीक लगेगी उसे तू अपनी रुचि अनुसार मनमानी कर लेगा। जबकि ज्ञानी हैं उन्हें मुमुक्षु की योग्यता-अयोग्यता का नाप आता है कि, इसमें योग्यता कितनी है ? और अयोग्यता कितनी है ? फिर इन्हें किस राह पर ले जाये तो वह रास्ते पर चढ़ जाये ?

'कृपालुदेव' ने एक वचन लिखा है कि निश्चय में निश्चय की योजना ज्ञानियों के हृदय में छीपी है। निश्चय में मतलब वास्तविकरूप से। सत्यमार्ग। निश्चय नाम सत्यमार्ग पर की योजना है। मुमुक्षु को किस तरह वहाँ ले जाना यह ज्ञानियों के

हृदय में हैं। वह पुस्तक में नहीं मिलता। क्योंकि पुस्तक में हजार बातें हैं। इसका Co-ordination कैसे करना वह तुझे नहीं समझ में आयेगा। ऐसी परिस्थिति है। शास्त्र में मार्ग कहा है परन्तु मर्म ज्ञानियों के हृदय में ही रहा है। 'कृपालुदेव' ने कितनी महत्व की बातें की हैं !!

अभी बात चली वे सब आगम की बात करते हैं। देखो ! आगम के साथ मिलान करते हैं, हम आगम के साथ... आप बात करेंगे तो भी हम आगम के साथ मिलान करके आगे चलेंगे ऐसा कहते हैं। भाई ! आगम में मार्ग कहा है। मर्म ज्ञानियों के हृदय में है। तो फिर क्या करेगा मिलान कर करके ?

ज्ञान दो प्रकार का है - एक Theoretical और एक Practical शास्त्र में Theoretical है Practical नहीं है। शास्त्र तो व्याख्यारूप है। व्याख्यान है वह तो। वहाँ तो Theoretical बात है, Practical बात है नहीं वहाँ पर। Practical तो Practical के ढंग से होता है इसमें कोई इसकी लिखावट नहीं होती, इसकी लिखावट कोई सम्भव नहीं है।

रोटी बेलते समय बेलन कैसे घूमाना यह लिखावट में नहीं आ सकता। साईकिल पर बैठते समय Balance कैसे बनाये रखना इसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। इसमें तो दोनों जगह Practice ही करनी पड़े। Practical Knowledge practice के बिना नहीं मिलता। तू आगम... आगम... आगम... पकड़कर बैठ जा लेकिन आगम में बात Practical की है नहीं। बात अधूरी है। अधूरी बात को तूने पूरी मान ली। तेरा पता कभी नहीं लगनेवाला है।

यह जो मर्म की बात है वह प्रयोगात्मक बात है। और ज्ञानी प्रयोग में चढ़ाते हैं। पुस्तक का कीड़ा नहीं बना देते। तू यह पुस्तक पढ़ ले, फिर यह पढ़ लेना, फिर यह पुस्तक पढ़ना... फिर वह... ऐसे नहीं। तू प्रयोग पर आ जा। तुझे

क्या होता है वह बता दे। ऐसा होना चाहिये... तुझे ऐसा होना चाहिये... तुझे ऐसा होना चाहिये। काम में लग जा। पढ़ते रहो... पढ़ते रहो, सुनते रहो, सुनते रहो - ऐसा कतई नहीं। काम में लग जा तू। काम कितना करके आया है यह बता। काम में लगेगा तो आगे जायेगा। वरना पढ़ते रहने से व सुनते रहने से कोई पता लगनेवाला नहीं है।

अतः ऊपर-ऊपर से करनेवाले की जो शुरुआत की भूमिका है उसे ऊपर-ऊपर से करके भी अशुभ में न चला जाये इसलिये बात है। तुझे अशुभ में हमें नहीं जाने देना है। इतना ही नहीं शुभ में अटकने भी नहीं देंगे यह ध्यान रखना। और तेरा ऊपर-ऊपर से चलने का प्रकार जो है उसमें भी फँसने नहीं देंगे। इतनी बात साथ-साथ है।

'तुझे तीसरी भूमिका में जाने को कहते हैं।' तीसरी मतलब शुभाशुभ से पार ऐसी शुद्धभाव की, मोक्षमार्ग की भूमिका में। **'हम ऊँचे-ऊँचे जाने को कहते हैं और तू ऐसे में नीचे कहाँ गिरता जाता है।'** 'समयसार' में इस पद्धति से 'अमृतचंद्राचार्य' ने एक श्लोक लिखा है। पुण्यपाप अधिकार में किसीने ऐसी बहेस की है कि आप हमें शुभ से छुड़ाते हैं तो क्या हम अशुभ में चले जाये क्या? तो कहा नहीं, नहीं। हम तुझे एक तीसरी जगह ले जाना चाहते हैं। हम तुझे तीसरी जगह ले जाना चाहते हैं। अथवा मुनिराज अशुभ तो करते नहीं परन्तु शुभ अनुष्ठान भी उनको नहीं है। पूजा, विधि-विधान कराना ऐसे-ऐसे सब शुभ के कार्य भी वे नहीं करते। फिर तो उन्हें क्या होता होगा? तो कहते हैं कि उनकी तीसरी भूमिका है। शुभाशुभ को छोड़कर वे शुद्धता में विचरते हैं। उनकी पूरी लाइन अलग है। वह शब्द वहाँ पड़ा है। तो हम तुझे शुभ छोड़कर कोई नीचे गिराना नहीं चाहते इसमें तो 'गुरुदेवश्री' ने शुभ का निषेध बहुत किया था। इसलिये उन्हें सुननेवाले भी बाद में

घर जाकर, समाज में जगह-जगह चर्चा तो करते ही हैं कि समाज में अशुभ छोड़कर शुभ करने के अलावा दूसरा उपदेश नहीं संप्रदाय में। समाज उस रास्ते पर चढ़ गया है। तब फिर जो शुभ करते हो जिसका शुभ पर बहुत जोर हो, उसे बहुत कीमत दे दी हो वे कहते थे कि, तो क्या हमें उपवास नहीं करना ? हमें हररोज लड्डू खाना क्या ? लड्डू खाते-खाते मोक्ष जाना होगा क्या ? या उपवास करके जाना होगा ? ऐसी-ऐसी सब चर्चाएँ चलती। लोगों में यह बात प्रसिद्धि में आ गयी कि 'कानजीस्वामी' शुभ का निषेध करते हैं। इसलिये कई लोग ऐसा सीधा प्रश्न करते हैं कि भाई ! आज शुभ की मना करते हो तो बात रह जाती है अशुभ की। तो क्या हमें अशुभ में जाना ? आप शुभ छोड़ना चाहते हो तो क्या हमें अशुभ में चले जाना ?

देख भाई ! आप इस विषय की गहराई में कभी गये हो ? कहेगा कि नहीं गये। फिर तो आपको जितनी समझ है इतनी सामान्य समझ भी यह कहनेवाले को नहीं है ऐसा समझकर आप यह बहेस करते हो क्या ? यह तो बिलकुल सामान्य समझदारी की बात है कि शुभ छोड़कर अशुभ में नहीं जाना चाहिये। नहीं जाना चाहिये। तो इतनी सामान्य बात 'कानजीस्वामी' जैसे महान तत्त्वज्ञानी के रूप में जो प्रसिद्ध हैं उन्हें इतनी भी समझ नहीं होगी क्या ? ऐसा मानकर तो कहीं आप ऐसा नहीं सोचते हैं न ? ओघे-ओघे भी इतना तो आप जानते हैं कि बड़े तत्त्वज्ञानी यह बात करते हैं, तो मतलब कोई सामान्य बात की अनभिज्ञता में ऐसी बात नहीं करते होंगे ? इसलिये जिज्ञासा में रहिये। वे कुछ और कहना चाहते हैं इसके पीछे। कोई दूसरी बात ही करना चाहते हैं। और वे क्या कहना चाहते हैं ? आपको समझ में आ जायेगा, तभी सही समाधान होगा। लेकिन आप पहले से ही उलटी बात - बहेस

करने लग जायेंगे फिर तो उनको जो कहना है उस पर आपका ध्यान ही नहीं जायेगा। ऐसी बात हो जायेगी।

'हमें ऊँचे-ऊँचे जाने को कहते हैं और तू ऐसे में नीचे कहाँ गिरता है ?' - ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। 'समयसार' में बात है। इसलिये खुद कहते हैं **'ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। हमारा कहने का आशय यह है कि तू तीसरी शुद्ध स्वभाव की भूमिका प्रगट कर।'** हमारा कहने का आशय ऐसा है कि, तू आखिरकार शुद्ध स्वभाव को प्रगट कर। हमारा आशय तो ऐसा है। जो कुछ भी कहना है इसके पीछे आशय तो ऐसा है कि, तू मोक्षमार्ग को प्रगट कर। शुद्धभाव कहो, शुद्ध भूमिका कहो, मोक्षमार्ग कहो, इस आशय से हमारी बात है।

'शुभ तो बीचमें आता है, परन्तु वह तेरा स्वभाव नहीं है।' बढ़िया Quality का अनाज हो और Quantity भी अच्छी हो। यह बाजरा जो होता है। बड़ा दाना होता है उसका बड़ा भुट्टा होता है, उस भुट्टेमें से पाँचसो ग्राम या एक कीलो बाजरे के दाने निकलते हैं। इतना वजनदार होता है ऊपर में। ऐसे में इसका डंठल भी इतना मजबूत होता है। वह अगर बिलकुल पतला हो तो उसपर भुट्टा टिक नहीं सकता। वह तो गिर जाये। और मिट्टी में गिरे तो तो वह बिगड़ जाये। फिर तो बाजरा अच्छा होगा नहीं। जिसका डंठल मजबूत हो, उसका पौधा भी मजबूत होता है। इसतरह तुझे शुद्धभाव की भूमिका आयी है तो तेरे पुण्य भी ऊँची Quality के होंगे। तेरे पुण्य भी उच्च कक्षा के बंधेंगे। फिर भी वह तेरा शुभभाव है। क्या कहा ? **'शुभ तो बीच में आता है, परन्तु वह तेरा स्वभाव नहीं है।'** इसलिये उस शुभभाव को भोगना, उसका फल भोगना इसकी हमें ना दी है।

ऐसा मोटा डंठल नहीं होगा तो ऊपर भुट्टा कैसे होगा ? परन्तु तुझे तो मीठा बाजरा खाना

है। मीठा बाजरा जो होता है वह तुझे खाना है। डंठल नहीं खाना है, ऐसा है। उसमें भी रस तो मीठा होता है। गन्ने जैसा होता है हँ ! पतला गन्ना होता है न ? ऐसा डंठल होता है। गन्ने जैसी मिठास नहीं होती है लेकिन उसमें भी रस होता है। क्योंकि पानी वहीं से चढ़ा है न ऊपर। मूलमें से पानी ऊपर चढ़ा है इसलिये उसमें रस होता है। परन्तु वह डंठल, उसे चबाकर रस तो तीर्थच-बैल आदि खाते हैं। खेत में काम करते बैल के लिये वह होता है। मनुष्य को खाने के लिये वह चीज़ नहीं है। वैसे शुभ के फल तुझे भोगने नहीं हैं। वह तो घास है ऐसा कहते हैं। अनाज फसल अच्छी हो तब साथ-साथ घास भी ऊँची जाति का उत्पन्न होता है परन्तु घास तो तीर्थच खाते हैं जबकि अच्छी फसल मनुष्य खाते हैं।

इसतरह तू आत्मा है तो तेरे आत्मा की शांति और आनंद का उपभोग कर। तू शुभ के फल को भोगने जायेगा तो अशुभ होगा। शुभ के फल का फल भोगने जायेगा तो उसमें तो तुझे अशुभ होगा और उसमें फिर आकुलता होगी। शुभ में भी आकुलता होगी और अशुभ में भी आकुलता होगी। हम तो तुझे आत्मा की परमशांति की ओर ले जाना चाहते हैं। तीसरी भूमिका मतलब परमानंद में ले जाना चाहते हैं। वैसा स्वभाव नहीं है मतलब तुझे भोगना उचित नहीं है, ऐसा कहना है।

‘शुभ और अशुभ दोनों एक कोटि के हैं ऐसा तू समझ और आत्मा की जो तीसरी भूमिका अमृतकुंभ है उसे ग्रहण कर।’ यह ‘समयसारजी’ के ‘सर्वशुद्ध अधिकार’ में ऐसी बातें आती हैं। आत्मा को जो आनंद है उस आनंद को अमृत कहा है। भगवानने इस आनंद को अमृत कहा है। इस अमृत को जो पीता है वह मरता नहीं। आत्मा के आनंद अमृत को जो पीता है वह फिर कभी मरता नहीं ? क्योंकि उसने अमृत जो पी लिया। अमृत पीनेवाला मरता नहीं। वह तो अमर हो जाता

है। यानी कि उसके जन्म-मरण नष्ट हो जाते हैं, उसके जन्म-मरण खत्म हो जाते हैं।

अब जो शुभ और अशुभ है वह उसकी बराबरी में आकुलता है अथवा विरुद्ध स्वभावी है। आनंद निराकुल स्वभावी है और शुभाशुभ में आकुलता है। आनंद को अगर अमृत कहा जाये (तो आकुलता को जहर कहना होगा)। (कोई ऐसा कहे) जहर कहते हैं ? आप इसे जहर कहते हो ? हम जिसे धर्म मानते हैं आप उसे जहर कहते हो ? वे सहन नहीं कर सकते। बच्चों को पक्की निबौरी भाती है। कच्ची निबौरी कडुआ लगे। वह निबौरी उसके हाथ से यदि ले लेंगे तो वह रोने लग जायेगा। परन्तु उस निबौरी को लेकर तुझे आम देते हैं। निबौरी ले लेने के पश्चात् आम देते हैं। लेकिन आम देते हैं इसे तो देखता नहीं और निबौरी क्यों ले लेते हो इसके लिये तूफान करता है, रोता है। यह ऐसी बात हो गई है संप्रदाय में। कि आप हमें शुभ से छुड़ाते हो। परन्तु भाई ! शुभ छुड़ाकर तुझे आनंद अमृत में ले जाने की बात है। शुभ छुड़ाते हो ऐसा कहकर चिल्लाते हो, तकरार क्यों करते हो ? बात तो कुछ ऐसी है।

‘गुरुदेवश्री’ बहुत कड़क भाषा बोलते थे। उन्हें खुद को पता था कि, स्वयं तीर्थकर द्रव्य हैं। इस भव में नहीं किन्तु आनेवाले भव से उस तीर्थकर प्रकृति का अनुबंध उनके शुभभावों से चालू होनेवाला है। तो यहाँ क्या कहते हैं पता है ? जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है वह जहर है। सीधी ऐसी ही बात करते थे। पता है खुद का खुद को तो भी। कि, जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध हो वह जहर है। जहर के पेड़में से जहरीले फल होंगे। जहर के पैड़ बोये नहीं जाते, ऐसा कहते हैं। बहुत कड़क बोलते थे। ऐसा उनका शुद्धात्मा का उपदेश उस जाति का था। वे इसतरह बोलते थे। नहीं समझनेवाले फिर इस बात को घूमा दे वह उनका दोष है। स्वयं तो

बहुत अच्छी लाइन पर बात ले गये थे।

'शुभ और अशुभ दोनों एक कोटि के हैं ऐसा तु समझ...' क्योंकि दोनों संसार के कारण हैं। शुभभाव के फल में भी संसार है और अशुभ भाव के फल में भी संसार ही है। अतः वे **'एक कोटि के हैं ऐसा तू समझ और आत्मा की तीसरी भूमिका अमृतकुम्भ है उसे ग्रहण कर।'** जो शुद्ध स्वरूप है उसके आश्रय से शुद्ध परिणाम है उसमें आनंद और सुख, शांति है। उसे तू ग्रहण कर।

'इसलिये ऊँचे चढ़ने को कहते हैं, परन्तु जो भावना ऊपर-ऊपर से आये उसे छोड़ देने को नहीं कहते।' भले ही ऊपर की भावना हो। गहराई में जाने के लक्ष से चालू रखना। हम उसे छोड़कर तुझे कहीं पाप में ले जाना नहीं चाहते। **'यदि गहरी भावना प्रगट करके शुद्धस्वभाव में जा सके तो उसे प्रगट कर; परन्तु न जा सके तो उसे छोड़कर अशुभ में जाने को नहीं कहते। ऊपरी भावना कुछ काम की नहीं ऐसे उसे समझ के छोड़ करके उसे छोड़नी नहीं है,...** काम की नहीं है सो बात सही है किन्तु ऐसा जानकर उसे छोड़ना और अशुभ में चले जाना नहीं है। **'किन्तु तू उच्च परिणति प्रगट कर यों कहने का आशय है।'** यानी कि आशय तो एक ही है। भूमिकानुसार उपदेश है।

कोई मांस आदि अभक्ष्य आहार लेता हो तो उसे कहेंगे कि भाई ! ये सब्जी में सबकुछ है ही। परन्तु सब सब्जियाँ खानेवाले को कहेंगे कंदमूल नहीं खाना चाहिये। इसतरह विभिन्न भूमिका में भिन्न-भिन्न उपदेश है। आखिरकार उसे आत्मा में ले जाना है। आशय वैसा है। परन्तु बात तो भूमिकानुसार यदि नहीं करेंगे और दूसरी करेंगे तो वह उसे तो कोई लागू पड़ती नहीं। और लागू न पड़े ऐसी बात से उसे कोई फायदा तो होता नहीं।

हमलोग ही देखो न ! सत्संग में न आते

हो उसे यों कहेंगे, भाई ! सत्संग तो छोड़ना नहीं चाहिये आपको। सत्संग में तो आना चाहिये, सत्संग छोड़ना नहीं चाहिये - परन्तु हररोज सत्संग में आनेवाले को क्या कहेंगे ? भाई ! आप सत्संग में आ गये मतलब कोई काम हो गया, सो बात नहीं है। आप प्रयत्न करो, आप प्रयोग करो, आगे बढ़ो। इसका अर्थ यह थोड़ी है कि आप सत्संग छोड़ देवे। जिस भूमिका में हो उस भूमिका से ज्ञानियों उपर-उपर उठाते हैं, उसे उपर उठाते हैं। तू यहाँ से आगे बढ़। आखर में पूर्णता तक ले जाने की बात है।

'भगवान के मंदिर में दर्शन करने के लिये फिरे और भगवान के द्वार न खुले तो थक कर लौट नहीं आना, भगवान के द्वार खुल जायेंगे; तू चक्कर लगाना मत छोड़ना।' 'टहेल' में समझते हैं ? प्रयास के विषय में 'टहेल' को क्या बोलते हैं हमारे यहाँ ? आपको तो पता होगा गाँव में हमारे यहाँ 'टहेल' मारनेवाले आते थे। एकदम प्रातःकाल में चार बजे, पाँच बजे घण्टा, डेढ़ घण्टा, दो घण्टा लोग जगे नहीं तब तक भजन गाते हैं। दो-तीन महीने तक हररोज ऐसे सुबह में निकलते हैं। लोग तो सो गये हो। लोगों के साथ उनका कोई संपर्क ही नहीं होता। वह तो भजन सुनाता है। अलग-अलग इलाके में घूमते-घूमते भजन सुनाये। आवाज ऊँची हो, इसलिए आदमी सोता हो और यदि थोड़ी नींद में हो तो उसे भगवान के भजन सुनाई देते हैं। ऐसे दो-तीन महीने भजन सुनाने के पश्चात् जब गाँव छोड़कर जाना हो तब वह सबके घर जाता है। दो-तीन महीने से मैं 'टहेल' लगाता हूँ आपके गाँव में, आपको जैसी श्रद्धा और आपके जितने भाव हो उस अनुसार कुछ दीजिये। तब कोई पैसे देता है, कोई कपड़े देता है, कोई अनाज देता है, वह जो भी मिले उसे लेकर आदमी चला जाता है। 'टहेल' मारनेवाले वैसे कोई जोर-जुल्म नहीं करते। और हररोज माँग-

माँगकर अपना माथा खराब भी नहीं करते। वह तीन महीने टहेल लगायेगा फिर एक दिन आकर ऐसा कहेगा भाई ! आपकी जितनी शक्ति हो, आपकी जो श्रद्धा हो, जो भी आपके भाव हो उतना दीजिये। नहीं देने पर जबरदस्ती माँगते भी नहीं दूसरे घर चला जाये, तीसरे घर ऐसा कर-करके सबके घर जाना होता है इसलिये उसे दिक्कत नहीं आती। कुछ न कुछ तो मिल ही जाता है। सब तो एक सरीखे नहीं होते। कोई कम देवे, कोई नहीं भी देवे, कोई ज्यादा भी दे देवे, ऐसा कर-करके उसके नसीब में जो भी मिलना लिखा हो, लेकर चला जाता है। 'टहेल' लगानेवाला आदमी थकता नहीं।

इसमें View Point क्या है 'पूज्य बहिनश्री' का ? कि, तीन-तीन महीने तक वह एक पैसा भी किसी से नहीं लेता। किसी के पास चुटकीभर आटा भी नहीं माँगता। ब्राह्मण ऐसे ही होते हैं, साधु लोग ऐसे होते हैं, वह थकता नहीं है, धीरजपूर्वक हररोज टहेल मारता है। 'टहेल' मारना मतलब चक्कर लगाना। बार-बार चक्कर लगाना।

तब ऐसा कहते हैं कि तू 'भगवान के मंदिर दर्शन करने के लिये 'टहल' लगाता रहे।' अब यहाँ बाहर का भगवान का मंदिर नहीं, यह जो हमलोग चुनाई करते हैं वह नहीं। भीतर में तेरे हृदय में परमात्मा विराजते हैं उस हृदयमंदिर में तू 'टहल' लगाया कर। 'टहल' मारने में तू भजन ऐसा गाना कि भगवान आप दरवाजा खोलिये ताकि दर्शन तो हो मुझे। यानी भगवान के दरवाजे तू चक्कर लगाते ही रहना, चक्कर लगाते ही रहना, थकना नहीं है तुझे, ऐसा कहते हैं।

'भगवान के मंदिर में दर्शन करने के लिये फिरे ('टहल' मारते रहना) और भगवान के द्वार न खुले...' और भगवान के दर्शन न हो तो 'थक कर लौट नहीं आना...' एक दिन 'भगवान के द्वार खुल जायेंगे।' ऐसा कहते हैं। यह उनकी अपनी Policy थी। इस दृष्टांत में Particularly इनकी

मौलिकता है उस बात में। कि आप मुमुक्षु की भूमिका में थे तो क्या करते थे ? आपको जबतक अपने भगवानआत्मा के दर्शन नहीं हुए तब तक ? तो कहा कि मैं तो 'टहेल' लगाती थी। नक्की किया था कि, भगवान के दर्शन किये बिना उनके द्वार, दरवाजा खुले नहीं तब तक मुझे तो 'टहेल' लगाते ही रहना है। मुझे थककर वापिस घर नहीं लौटना है। जैसे बहुत दिन इसतरह इंतजार किया भगवान तो कोई दर्शन दे नहीं रहे हैं तो चलो अब वापिस घर लौट जाये। नहीं, 'टहेल' लगाना छोड़ना नहीं है। जब तक द्वार नहीं खुलेंगे तब तक 'टहेल' लगाना छोड़ना नहीं है। जब तक द्वार नहीं खुलेंगे तब तक 'टहेल' लगाना चालू ही रखना है। और मुझे विश्वास है, श्रद्धा है कि एक न एक दिन यह द्वार जरूर खूल जायेंगे। यह बात उन्होंने एकाद दफा की थी फिर मुमुक्षुलोग बार-बार इस बात को उनके श्रीमुख से कहलवाते थे कि, 'टहेल'वाली बात कीजिये न ! कि आप किस तरह टहल लगाते थे ? वे स्वयं अपनी मौलिक पद्धति से बात करते थे।

'तू चक्कर लगाना मत छोड़ना। उसी प्रकार तू चैतन्यमंदिर में ('टहल' लगा)...' तेरे चैतन्यमंदिर की टहेल लगा 'कि मैं चैतन्य हूँ। पहले तुझे ऊपर-ऊपर से समझ में आये उसे छोड़ना नहीं।' भले ही तुझे ऊपर-ऊपर से समझ में आयेगा परन्तु छोड़ना मत। 'जब तक चैतन्य पहिचानने में न आये तबतक वहाँ, फिरते ही रहना,...' पहिचानने की बात ली है। यह बात कई लोग नहीं समझते हैं वे रट लगाने में चढ़ जाते हैं कि देखिये ! 'बहिनश्री' कहते हैं कि तू 'टहल' लगाता रहे। इसलिये मैं चैतन्य हूँ मैं भगवान हूँ... मैं भगवान हूँ... मैं भगवान हूँ... मैं भगवान हूँ... करते-करते एक दिन भगवान का दरवाजा खुल जायेगा। ऐसे नहीं। तुझे पहचान नहीं हो तब तक टहल लगाते ही रहना। पहिचानने के प्रयत्न में तू आगे बढ़ना, ऐसा कहते हैं। और इस प्रयत्न

में तू थकना मत। पहिचान हो जैसे तू प्रयत्न करना और पहिचान न हो तबतक तू अपना प्रयत्न चालू रखना, ऐसा कहते हैं। अब एक शब्द बीच में ऐसा रखा है कि उसपर ध्यान नहीं जाता।

मुमुक्षु :- सत्पुरुष पर ध्यान नहीं जाये...

पूज्य भाईश्री :- जो कहना चाहते हैं, क्या है कई लोगने क्या कर लिया है हमारे यहाँ। 'गुरुदेव'ने बहुत जोर से कुछ आत्मभावना की बात की है कि तुम भगवान हो। तुम भगवान हो पहले निश्चय करो। और तुम भगवान ही हो, तुम परमात्मा ही हो यह बात तुमको छोड़ना नहीं है। कुछ लोग क्या करते हैं कि, रटीरटाई बात पर चले जाते हैं। उसकी रट में लग जाते हैं और पहचान की पद्धति का अनुसरण नहीं करते।

मुमुक्षु :- मन से निश्चय कर ले कि मैं भगवान हूँ।

पूज्य भाईश्री :- उन्होंने ऐसा ही कहा है कि तू निश्चय कर कि, मैं भगवान हूँ। तू पहले निश्चय कर कि मैं भगवान हूँ। बहुत जोर देकर उनकी बुलंद आवाज़ में उन्होंने ऐसी बातें की हैं। और इसकी टेप भी अभी मौजूद है। वे लोग सुनते हैं, हररोज़ सुनते हैं। जो उस रट में लग गया हो वह हररोज़ इसकी टेप भी सुने।

यहाँ निश्चय कर कहने का मतलब है तू पहचान कर ऐसा है। निश्चय करना मतलब पहचान करना। और इस पर उनका बड़ा व्याख्यान है १४४ गाथा का। वहाँ निश्चय नाम रट लगाने का समझ लेते हैं। फिर उस रट में लग जाये। इसतरह बिना सत्संग, जैसे सत्संग बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है जैसे सत्संग बिना ज्ञान कल्पनारूप हो जाता है। ज्ञान और ध्यान दो साधन हैं न ? तो कोई सत्संग के बिना ध्यान करता है वह तरंग में चढ़ जाता है। कई प्रकार के भीतर में तरंग उठते हैं न ! उसे लगता है आहा..! कुछ होता है... कुछ होता है... मुझे कुछ होता है।

आये थे यहाँ 'आग्रा' में वह वृद्धा है न ? गाड़ी लेकर हमें रोज Receive करने आती हैं, वहाँ 'मथुरा'। वह वृद्धा जो आयी थी उसने कहा आपसे कुछ बात करनी है। मुझे यह सब परमात्मा की बात सुनकर के कभी-कभी हाथ-पैर सुन पड़ जाते हैं। मुझे तब क्या समझना ? मैंने कहा यह तो शरीर की अवस्था है, आत्मा की नहीं है, ऐसा समझना। उसे क्या भांति होती है कि मुझे जैसे अनुभव हो गया। मेरे हाथ-पैर सुन पड़ गये इसलिये मेरा आत्मा देह से मानो भिन्न पड़ गया और मैं स्वानुभव में आ गई। ऐसी-ऐसी कल्पना में चढ़ जाते हैं।

सत्संग बिना यह सब... वे क्या करते हैं कि खुद ध्यान में बैठते हो। मैं कभी-कभी इसतरह ध्यान में बैठती हूँ न कि तब मेरे हाथ-पैर सुन हो जाते हैं। तो मुझे क्या समझना ? आपको शंका क्यों उठी ? अगर आपको सच में अनुभव हुआ होता तो पहले तो ऐसा प्रश्न, ऐसी शंका ही नहीं उठती आपको। परन्तु होता क्या है इसकी तो खबर नहीं होती और भीतर में मान्यता ऐसी कर ली कि मुझे अनुभव होता है। हालाँकि वे सब शरीर की अवस्थाएँ हैं। ऐसा कुछ हो रहा हो तो उस पर कोई जोर नहीं देना है। मुझे क्या करना ? देखो ! यह लाइन तो दिखाते हैं। हररोज़ प्रवचन में विषय चलता है कि मुमुक्षु को इस क्रम से आगे बढ़ना है। सो किसी एक की बात है ! फिर पुछने की क्या बात रहती है ? आपका ध्यान नहीं गया क्या ? अगर नहीं गया तो फिर से शुरू कीजिये। तो कहा, ठीक है... ठीक है...। इस प्रकार सत्संग के अभाव में कितने ही प्रकार के तरंग उठते हैं ध्यान के दौरान इसे मान लेवे कि मुझे आत्मा का ध्यान हो रहा है।

इसीतरह सत्संग बिना अपनेआप पुस्तक पढ़े तो ऐसा मानने लगे कि मैं समझता हूँ और मुझे ज्ञान हुआ है। परन्तु वह ज्ञान नहीं है, कल्पना

होती है। कल्पना में चढ़कर कल्पना को दृढ़ करे और वह कल्पना अगर कोई छुड़ाने का प्रयत्न करे तो छोड़ नहीं सके। मुश्किल तो ऐसी खड़ी हो जाती है। वह कल्पना को छोड़ ही नहीं सकता।

मुमुक्षु :- वास्तव में अनुभव हो, उसे तो ज्ञानी के पास सर्टीफाईड करवाया जाये तभी नक्की होवे न !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, खुद को नक्की हो जाय। 'समयसारजी' की २०६ गाथा में ऐसा कहा है कि, तू आत्मा में संतुष्ट हो। वह सत्य कल्याण है। तू आत्मा का अनुभव कर उतना ही सत्य अनुभव का विषय है। और तू आत्मा में संतुष्ट हो, तुझे तृप्ति होगी। तुझे फिर वचनातीत आनंद का अनुभव होगा। किसी को पुछना मत। 'मा अन्यायप्राक्षी' इतना संस्कृत शब्द पड़ा है। इसका अर्थ कि, तुझे पुछना नहीं पड़ेगा। तुझे आत्मा का अनुभव होगा तो तुझे पुछना नहीं पड़ेगा। इसका कारण है कि वह एक स्वाद का विषय है। आपने कभी शक्कर नहीं खाई है, मान लीजिये यह एक तर्क है। अब शक्कर मीठी लगे वह कैसी मीठी लगती होगी आपको पता नहीं है। आपको शक्कर का टुकड़ा दिया। आप चबोड़ते हुए इसका स्वाद ले रहे हो। तो शक्कर कैसी मीठी होगी ? यह प्रश्न पुछने का कहाँ खड़ा होता है ? आपको अनुभव हो रहा है शक्कर का जो आप स्वाद लेते हो तो वह कितनी मीठी लगती है यह बात समझाने का शक्कर के स्वाद लेनेवाले को पैदा ही नहीं होती। परन्तु इस विषय में जो भ्रम होता है उस भ्रम को स्वयं को check करना हो तो आगे-पीछे की भूमिका को स्वयं को समझ लेना चाहिये कि किस भूमिका में अनुभव होता है ? और अनुभव के बाद कैसी भूमिका चलती है ? परिणाम की भूमिका कैसी होती है ?

जिसको भ्रम होता है और अनुभव सही नहीं होता है उसको आगे जो भूमिका का भेदज्ञान

होना चाहिये वह नहीं होता। क्योंकि भेदज्ञान द्वारा विभाव जाति की परख होती है और तब वह आत्मा को ज्ञान से भिन्न करती है। अब जो मानसिक शांति है सो तो विभाव है, इसे ही अगर वह आत्मा की शांति मान ले तो उसकी परख उसे नहीं आती, उसने विभाव को पहचाना ही नहीं है। पहचान होनेपर तो वह यदि मानसिक शांति का वेश लेकर आये तो भी पकड़ ले कि यह विभाव है। उसका निषेध आयेगा। इससे भिन्न होकर अंतर में अनुभव कर लेगा। जबकि भ्रांतिवान होगा वह उसे ही पकड़कर मान लेगा कि यह अनुभव हो गया और शांति को पकड़ेगा। ऐसे फर्क पड़ता है। इसलिये एक तो परख नहीं होती उसे और भेदज्ञान की प्रक्रिया नहीं होती। और वह खुद ज्ञान-ध्यान करे उसी में मान लेगा कि मुझे अनुभव हो गया जबकि वह कल्पना होती है।

मुमुक्षु :- जो मानसिक शांति का वेश है उसकी परख किस प्रकार हो ? कि, यह मानसिक शांति है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ इसकी परख ऐसी है कि, इसमें भी आकुलता है। जो भेदज्ञान का प्रयोग करता है वह विभाव और स्वभाव को परखने में माहिर हो जाता है - Expert हो जाता है। क्योंकि इसके पहले खुद के भावों का अवलोकन चलता है। अतः उन्हें भावों का परिचय अनुभवपूर्वक होता है। अनुभव से परिचय होता है तब उसे परख होती है। परख होने पर वह पकड़ लेता है। वह धोखा नहीं खाता। ऐसा है। वरना भूलावे में पड़ जाये ऐसा विषय है जरूर और कई लोग धोखे में आ जाते हैं। इसमें बहुत लोग धोखे में आ जाते हैं।

दूसरा, अनुभव होनेवाले को ख्याल आ जाता है कि, यह बात तो कोई प्रसिद्ध करने जैसी नहीं है। तब जिसको नहीं होता है वह दूसरे को बताये बिना रह नहीं सकता। वह सबको कहता फिरेगा। यह फर्क हो जाता है। उसे कहने का मन हुआ

करता है।

मुमुक्षु :- सही अनुभववाला उसका आनंद लेता है।

पूज्य भाईश्री :- वह आनंद को वेदता है। जानता है और आनंद को वेदता है। 'नियमसार' में ऐसी एक गाथा है कि तू परदेश जाकर संपत्ति कमाकर ले आया तो अब उसका दिखाव मत करना एकांत में इसका उपभोग करना। दिखावा किया तो लूट जायेगा। क्योंकि लोग माँगने चले आयेंगे। तेरे सगे संबंधी कहेंगे कि, भाई ! हमें थोड़ी तकलीफ है तो Loan दीजिये। उधार दीजिये। ब्याज पर दीजिये। धर्म के नेता लोग आयेंगे फंड-चंदा लेने को आ जायेंगे। तेरी संपत्ति खोने लगेगी लोग देखेंगे तो मांगेंगे। इसलिये तू दिखाना मत। चुपके से खाना। तेरा गुड़ तू स्वयं ही घर बैठे-बैठे खा लेना। गाँव में दिखावा करने जैसी चीज नहीं है। ऐसी बात है। 'नियमसार' में यह बहुत सुंदर गाथा है।

इसतरह वर्तमान में क्या है ? धर्म दारिद्र्य है। आप आदिवासियों के बीच हीरे और निलम के हार पहनकर जायेंगे तो वे लोग तो लूट ही लेंगे आपको और कुछ नहीं होगा। आदिवासी लोग क्या करते हैं ? मार-मारकर लूट लेंगे आपको। इसतरह ऐसे धर्म दारिद्र्य के बीच आप ऐसा कहो कि मुझे ज्ञान हुआ है, मुझे आत्मज्ञान हुआ है, मुझे आत्मा का आनंद आया है। तू तो मर गया। पुछने आये उसे कह देगा कि भाई ! आपको क्या काम है इसका ? आपको समझो न ! जो बात कहते हैं उसे समझो। फिर आपको अपनी परख जिस दिन आये तब तक नक्की कर लेना। पूछ-पूछकर क्यों नक्की करते हो ? उसे तो ऐसा ही कहना पड़े। आपको जब परखने की शक्ति आये, ऐसी योग्यता आये तब तो आपको कुछ कहना नहीं पड़ेगा, यह बात आपको समझानी नहीं पड़ेगी और अभी आपको बताने से आपको कोई फायदा नहीं है, उलटा नुकसान है, कहनेवाले को

तो नुकसान है। इसलिये इस बात की समझ हो जब तो दीक्कत नहीं आती, वरना गड़बड़ी हुए बिना रहे ही नहीं। यह कोई ढिंढोरा पीटने का विषय तो है नहीं।

क्या कहते हैं ? 'जबतक चैतन्य पहिचानने में न आये तबतक वहाँ फिरते ही रहना, लक्ष्य रखना कि मुझे अभी बहुत आगे जाना है।' ऐसा पहले से लक्ष में रखना। 'तेरा पुरुषार्थ उभरने पर चैतन्यमंदिर के खुलने का तुझे अवकाश है।' जिस दिन तेरा पुरुषार्थ जागृत होगा तेरे दरवाजे, भीतर के किवाड़ खूल जायेंगे। ऐसे आशावादी रहकर तू प्रयत्न करना ऐसा कहते हैं। निराश होकर नहीं। यह लाइन (मार्ग) छोड़ मत देना।

'यदि दूर जायेगा तो तू उलटा और दूर चला जायेगा।' सत्संग छोड़ दिया, तूने 'टहेल' लगाना छोड़ दिया, तो कहाँ चला जायेगा और तेरे परिणाम कहाँ जायेंगे (इसका) कोई ठिकाना नहीं रहेगा। कुछ-कुछ बातें तो 'बहिनश्री' की चर्चा में बहुत अच्छी आयी हैं। चर्चाएँ बहुत अच्छी चलती थी। देते थे, २०-२५ मिनट देते थे, ज्यादा से ज्यादा आधा घण्टा, लेकिन चर्चाएँ बहुत अच्छी चलती थी। फिर कभी कोई जिज्ञासु आ जाने पर थोड़ा लंबा भी चल जाये तो चल जाये। परन्तु सामान्यतः Normally २५ मिनट के करीब समय देते थे। चर्चाएँ अच्छी चलती थी।

'यदि दूर जायेगा तो तू उलटा और दूर चला जायेगा। दृष्टि बराबर रखना।' दृष्टि नाम दृष्टिकोण। 'कि, मुझे अभी भीतर जाना है।' वरना सब ऊपर-ऊपर से चलनेवाले ऐसा ही पकड़ लेंगे कि, हमे ऊपर-ऊपर से चलने का कहा है इसलिये ऊपर-ऊपर से चलते रहो। कभी भी भीतर जाना हो जायेगा। ऐसा नहीं है। भीतर जाने का दृष्टिकोण तो शुरु से होना ही चाहिये तब ही वह आगे बढ़ सकेगा वरना नहीं बढ़ सकेगा। आगे थोड़ी बात की है। यहाँ तक रखें।

द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-२० पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.२९-७-१९९१

'शक्तिकी निरंतर पकड़ अथवा एकतासे अथवा 'शक्तिमयी ही हूँ' इस अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारका प्रत्यक्ष समाधान होता है;... खुद ज्ञानी हैं इसलिए 'शक्तिमयी ही हूँ' ऐसे अनुभवसे 'शक्तिमयी ही हूँ' ऐसे अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारोंका प्रत्यक्ष समाधान हो जाता है। यानी कि मुझे कोई असमाधान नहीं है, ऐसा लिखते हैं। मैं वहाँ आ नहीं सकता हूँ, गुरुदेवके दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हैं, बरसों बीत गये हैं, ये सब बातें सही हैं, परंतु मुझे असमाधान नहीं है। ऐसा पुण्ययोग नहीं है और गुरुदेवके - उपकारीके दर्शन नहीं होते हैं इसका खेद भी होता है परंतु असमाधानके कारण खेद नहीं होता। (कहीं भी) असमाधान नहीं है। खेद है किन्तु उसका भी समाधान है और खेद नहीं है उसका भी समाधान है। पूरा-पूरा समाधान रहता है। सब वृत्तियोंका समाधान रहता है।

'प्रत्यक्ष समाधान होता है; व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ समझमें आता है;...' और इस अंतर समाधानपूर्वक - अंतर अनुभवपूर्वक गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ अब समझमें आता है। गुरुदेवकी वाणीमें जो गहराई है वह अब मुझे मेरा अनुभव होने पर समझमें आती है कि, 'हे गुरुदेव ! आप कितनी पहोलाई तक प्रसर चुके हो, पहोलाई भी है साथ ही ठोसपना भी !' (पत्रांक - १७में) दोनों बातें ली हैं।

'व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ समझमें आता है, जिसका फल वृद्धिगत होते हुए सुखकी पूर्णता है।' यह इसका समाधान, यह गुरुदेवकी वाणीसे हुई समझका फल। इस ज्ञानका फल क्या आयेगा ? कि मेरे परिणाममें सुख वृद्धिगत होता रहेगा और पूर्ण सुख प्रगट हो जायेगा। मुझे अनंत सुखकी प्राप्ति हो जायेगी।

'अशुभमें सहज खेद;...' (अर्थात्) ये गुरुदेवके दर्शन नहीं होते हैं या अशुभ अंश भी परिणाममें होता है। 'अशुभमें सहज खेद, शुभमें कुछ उत्साह, सहज ही होता है;...' अतः क्या है कि, आत्माका चिंतवन आदि

सहज ही चलता होगा (उसमें) सहज उत्साह होता है। 'पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें भी फेरफार करनेसे कोई प्रयोजन नहीं;...' वृत्तिमें फेरफार करनेका सवाल नहीं है। पर्यायमें कोई फेरफार करनेका प्रश्न नहीं है। न तो अशुभमें या शुभमें या शुद्धतामें फेरफार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। 'मात्र पिंड हूँ' 'वृत्ति नहीं;...' ऐसी (बात) है।

मुमुक्षु :- अशुभ भाव होते हैं तो खेद होता है, परंतु कहीं भी फेरफार करनेकी बुद्धि नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं...नहीं...नहीं फिर तो असमाधान हो गया। अगर फेरफार करनेकी बात आये जब तो असमाधान हो गया, ऐसा है। जब अपने परिणाम अंशमें फेरफार करनेकी बुद्धि भी न हो तो संयोगमें (फेरफार करनेका) जोर तो आये ही कहाँसे ? वे तो समझते हैं कि यह कुदरती वस्तु है। प्रत्येक परमाणु कुदरती वस्तु है और प्रतिसमय प्रत्येक परमाणु अपने गुणधर्म अनुसार परिणामन करते ही जा रहे हैं। इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र किसीको उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है (और) मेरा भी नहीं है। अतः वह Side तो बंद ही कर दो। संयोगोंमें फेरफार करनेकी बात तो छोड़ ही दो। अब बात रही अपने परिणामकी, जहाँ सुख-दुःख होता है। तो कहते हैं कि, उसमें भी फेरफार नहीं करना है। क्यों ? क्योंकि वहाँ भी फेरफार करनेका मेरा अधिकार नहीं। मैं त्रिकाली अक्रिय हूँ, निष्क्रिय हूँ, सक्रियमें फेरफार करनेका अधिकार निष्क्रियको नहीं। सीधा ऐसा ही ले लेते हैं।

मुमुक्षु :- शुद्धतामें फेरफार करना वह पुरुषार्थ नहीं है क्या ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह पुरुषार्थ इस प्रकार सम्यक् है। शुद्धतामें फेरफार करनेकी वृत्ति इसका नाम पुरुषार्थ



नहीं। वह पुरुषार्थका स्वरूप भी नहीं, वह तो पर्यायका कर्तृत्व है। इसलिए तो 'तत्त्वानुशीलन' में एक प्रकरण लिखा है न ! ज्ञानके बहाने, पुरुषार्थके बहाने, श्रद्धाके बहाने, रुचिके बहाने, विवेकके बहाने या किसी भी बहाने परिणाममें फेरफार करनेकी बुद्धि असम्यक् है। सम्यक् नहीं (किन्तु) असम्यक् है। कर सकते नहीं फिर भी करना है (इसलिए) झूठी है, ऐसी (बात) है।

अशुभमें सहज खेद होता है, शुभमें सहज थोड़ा उत्साह भी होता है। होता है, करता हूँ, करता हूँ, ये प्रश्न नहीं है (परंतु) होता है। 'पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें...' (अर्थात्) शुभाशुभमें या शुद्धतामें भी फेरफार करनेका मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। अर्थात् प्रयोजनका विषय एकांतरूपसे अपना शुद्धस्वरूप ही है। स्वयं ही प्रयोजनका विषय है, इसके अलावा कोई प्रयोजनका विषय नहीं है।

प्रयोजनका अर्थ क्या ? प्र = विशेषरूपसे। योजना (अर्थात्) To join = जुड़ना, जुड़ जाना, विशेषरूपसे जुड़ना। कहाँ (जुड़ना) ? स्वरूपमें। प्रयोजनका विषय स्वरूप ही है, और कोई नहीं। बस ! मेरा स्वरूप ही मुझे प्रयोजनभूत है और इसके अलावा मुझे कोई प्रयोजनभूत नहीं है। उसमें पर्यायका प्रयोजन अपने आप आ जाता है। पर्यायका प्रयोजन उसमें समाविष्ट है, समाविष्ट हो जाता है। इसके लिए अलग-से कुछ करनेका प्रश्न नहीं रहता।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और ज्ञानस्वरूप रहना ही मेरा प्रयोजन है।

पूज्य भाईश्री :- मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और मैं तो ज्ञानस्वरूप ही रहता हूँ। रहनेका प्रश्न कहाँ है !

ज्ञानस्वरूप ही मैं रहता हूँ, बस ! इतना ही मेरा प्रयोजन है। मेरे लिए बात पूरी हो गई। मुझे पर्यायके सामने देखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, पर्यायके सामने मुझे देखनेकी कोई ज़रूरत नहीं है। ये द्रव्यदृष्टिका प्रकाश है ! बहुत सुंदर शैली आयी है ! पत्रोंमें भी (क्या) शैली आयी है !! जोरदार शैली आयी है !!

मुमुक्षु :- पूर्णताका लक्ष्य जो शुरूआतमें बाँधा, वह प्रयोजन इसमें आ जाता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसके गर्भमें (पूर्णताके लक्ष्यमें) द्रव्यस्वभाव रहा है और द्रव्यस्वभावके अवलंबनमें पूर्णता गर्भित है। पूर्णताका लक्ष्य गर्भित है, वह लक्ष्य छूटता नहीं। वह लक्ष्य कोई छूट नहीं जाता। क्योंकि अपूर्ण पर्यायका ज्ञान होता है और अपूर्ण है ऐसा ज्ञान होते ही पूर्णताकी ओर वेग पकड़ता है। पूर्ण (स्वरूपके) आश्रयसे पूर्ण होनेमें वेग आता है। जब अपूर्ण पर्यायका ज्ञान होता है और अनुभव साथमें हो तब पूर्णके आश्रयसे पूर्ण होनेका वेग उत्पन्न होता है। प्रतिसमय यह रीति चालू रहती है, वृद्धिगत होती है।

'मात्र पिंड हूँ, वृत्ति नहीं, गुरुदेवके इन्हीं वचनोंको हृदयमें उतार लिया है।' (अर्थात्) मैं तो त्रिकाली पिंड हूँ अक्रिय चिद्बिंब हूँ, एक समयका परिणमन या वृत्ति मैं नहीं, गुरुदेवके इन वचनोंको मैंने हृदयमें उतार लिया है, देखिये ! एक दिनके व्याख्यानमें जो उतार लिया, वह यह उतार लिया है।

'शेष फिर।' विशेष बादमें लिखेंगे, ऐसा कहकर पत्र पूरा कर दिया है। 'धर्मस्नेही निहालचंद्र।'

आवेदन पत्र

(पूज्य सोगानीजी की १०० वीं जन्म-जयंती में आने की जानकारी)

नाम : गाँव-शहर :

पहुँचने कि ता. बड़े छोटे

साफ अक्षरों में उपरोक्त फॉर्म भरकर निम्न पते पर भेजने का अनुरोध है।

संपर्क : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

(पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा)

अंतर की रुचि हो और गुरु के प्रति बहुमान न हो ऐसा नहीं होता। यदि गुरु के प्रति बहुमान न आये तो उसकी रुचि में कचास है। उसने अपनी बुद्धि और कल्पना से सब निर्णय किया है। जिसे आत्मा को प्राप्त करने की रुचि हो उसे गुरु के प्रति अर्पणता साथ होती है कि मैं कुछ जानता नहीं हूँ। स्वयं को जिस मार्गपर चलना है वह मार्ग जिन्होंने प्रगट किया उनके प्रति उसके हृदय में विनय एवं भक्ति तथा अर्पणता होती ही है।

(स्वानुभूतिदर्शन-२०७)



प्रश्न :- श्रीमद्जीने कहा है कि - 'दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुष को खोजकर

उसके चरणकमल में सर्वभाव अर्पण कर दे।' तो सर्वभाव का अर्थ क्या सर्वार्पणता है?

समाधान :- हाँ, सर्व प्रकार की अर्पणता। गुरु जो कहते हैं उसके प्रति पूर्ण अर्पणता, उसमें अपनी कल्पना और चतुराई बिलकुल नहीं। गुरु जो कहते हैं वह सब मान्य है; किन्तु वह मेरी समझ में नहीं आता - इस प्रकार स्वयं समझने का प्रयत्न करे। मगर गुरु जो कहते हैं वही बराबर है। मेरी अपनी कचास है।

श्रीमद्जी तो यहाँ तक कहते हैं कि - 'गुरु को सर्व भाव अर्पण करके प्रवृत्ति करता रह। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना;' उसका अर्थ है कि तुझे मोक्षकी प्राप्ति होगी ही।

(स्वानुभूतिदर्शन-२०८)

पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी के १०० वें जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की १०० वीं जन्मजयंति उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित गुरुगौरव होल में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के द्रव्य दृष्टि प्रकाश ग्रंथ पर गुरुगौरव होल में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद गुरुगौरव होल में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन और गुरुगौरव होल में भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा।

इस प्रसंग में भारतवर्षीय सभी मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है। आनेवाले मुमुक्षुओं को संख्या सहित अपने आने की जानकारी संस्था के कार्यालय में देने की विनंती।

संपर्क : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- भाव में ऐसा आता है कि है गुरुदेव ! हम कुछ जानते नहीं थे; आपने ही मार्ग बतलाया... तथा दूसरी ओर ऐसा आता है कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता; तो क्या समझना ?

समाधान :- गुरुदेवने (मेरा कार्य) कर दिया ऐसा कहने में आये परन्तु करना तो स्वयंको पड़ता है। अन्तकाल में स्वयं अपने दोष से भटका है। भगवानको या गुरु को पहिचाना नहीं; मिले फिर भी पहिचान नहीं पाया। इस पंचमकाल में गुरु मिले, उनकी वाणी मिली, उसे स्वयं ग्रहण करके पुरुषार्थ करे तो जगता है। गुरुदेव की वाणी तो सबके लिये प्रबल निमित्त है, परन्तु तैयारी तो स्वयं को करनी रहती है। गुरुदेव का तो अमाप उपकार है, परन्तु पुरुषार्थ स्वयं को करना रहता है। गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे कि तू कर तो होगा।

अपनी स्वाधीनता से होता है। तेरा द्रव्य स्वतंत्र है; सब द्रव्य स्वतंत्र हैं। तू अपना पुरुषार्थ कर, परन्तु पुरुषार्थ करनेवाला गुरु का उपकार माने बिना नहीं रहता; उसे उपकारबुद्धि आये बिना नहीं रहती।

(स्वानुभूतिदर्शन-२०४)



प्रश्न :- करे स्वयं, फिर भी उपकार मानना ?

समाधान :- स्वयं करे फिर भी कहे कि हे गुरुदेव ! आपने (मेरा उद्धार) कर दिया। आचार्य भी शास्त्र में इसीप्रकार कहते हैं कि परमगुरु के अनुग्रह से हमारा निजवैभव प्रगट हुआ है। कुंतकुंदाचार्य के लिये श्री देवसेन आचार्य जैसे कहते हैं कि आप वाणी न लाये होते तो हम जैसे पामरों का क्या होता ? उसी प्रकार से ऐसे गुरु पंचमकाल में पधारे तो सबका उपकार हुआ; नहीं तो क्या होता ? गुरुदेव पधारे तो सबको

मार्ग स्पष्ट करके बतलाया।

(स्वानुभूतिदर्शन-२०५)



प्रश्न :- ज्ञानी के प्रति भक्ति किस प्रकार प्रगट होती है ?

समाधान :- मात्र बाहर से भक्ति करनी ऐसे नहीं है, किन्तु स्वयं को भीतर से उनकी महिमा आये वह ज्ञानी के प्रति भक्ति है। अंतरमें से बहुमान आना चाहिये; ज्ञानीके वचनों पर सभी प्रकार से बहुमान आना चाहिये। ऐसी अर्पणता आये कि गुरुदेव कहते हैं सो बराबर है। उन्होंने जो मार्ग कहा है वह बराबर है। ऐसे अपने से निश्चय करके बहुमान आना चाहिये। स्वयं विचार करके निर्णय करे यह सत्पुरुष हैं और वे अपूर्व मार्ग बतला रहे हैं। पश्चात् वे कहते हैं वही ठीक है - ऐसे बहुमान-भक्ति अपने अंतरमें से आती है।

(स्वानुभूतिदर्शन-२०६)



प्रश्न :- गुरु जो कहते हैं उस कथन में शंका न हो ऐसी तैयारी होनी चाहिये ?

समाधान :- ऐसी तैयारी अंतरंग से बहुमान-भक्ति करनेवाले को हो जाती है। गुरु जो कुछ कहते हैं उसमें कोई आशय होगा ! कोई हित होगा ! वह ऐसा अर्थ ग्रहण करता है। दिखता तो ऐसा है, फिर भी वे ऐसा क्यों कहते हैं ? - ऐसा नहीं; किन्तु उसमें कोई हित या कोई आशय होगा - ऐसा ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- एक हो वहाँ अविनाभावी दूसरा होता ही है ? आत्मा की रुचि हो वहाँ उसे ज्ञानी के प्रति बहुमान होता ही है ?

बहिनश्री :- अंतर की रुचि हो उसे ज्ञानी के प्रति बहुमान होता ही है - ऐसा सम्बन्ध है।

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-२० पर)



अध्यात्म के उन्नत शिखर पर बिराजमान करुणानिधान कृपासिंधु
भव्यजीवों के हितैषी पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर
श्रद्धासुमन सहित कोटि कोटि प्रणाम



हे दिव्यमूर्ति ! आपका इस काल में जन्म हम जैसे पामरजीवों के लिये
कल्पवृक्षतुल्य है। आपकी निष्कारण करुणा का क्या स्तवन करें ?
हे गुणमेरु ! गुणपूज ! आपके गुणों का स्तवन, आपके स्वरूप का
चिंतवन, आपकी मुखाकृति का हृदय से अवलोकन,
मन-वचन-काया की चेष्टा के अद्भुत रहस्यों का निदिध्यासन
हृदयपूर्वक हो यही आज के दिन भावना है।
मन-वचन-काय योग से जाने-अनजाने में जो कोई विराधना, अशातना,
अपराध हुए हैं उन सबकी शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमा याचते हैं।
आप परमकृपालु परमदयाल के चरणों में शुद्धचित्त से नमस्कार हो,
नमस्कार हो।

- स्वानुप्रकाश परिवार